शिक्षा प्रक्रिया में आकलन क्यों जरूरी है और इसे कैसे किया जाए? यह सवाल मौजूदा शैक्षिक बहस में केन्द्रीय बन चुका है। यह लेख परंपरागत और प्रचलित एकरूप आकलन की आलोचना करता है। तर्क है कि यह बच्चों के संदर्भ की विविधता और शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों की अनदेखी करता है। अतः शैक्षिक सुधार की दिशा में इस तरह के आकलन किसी तरह का योगदान नहीं कर सकता।

आकलन का वर्तमान चक्रव्यूह

हृदयकान्त दीवान

परिचय

विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार हैं।

हाल ही के वर्षों में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के सीखने के आकलन पर ज़ोर ने विराट रूप ले लिया है। एक ओर यह ज़ोर है कि हर बच्चे का अपना संदर्भ होता है, सीखने का ढंग होता है, अपना एक अलग नज़रिया होता है और हर बच्चा सीखता है व सीख सकता है। इसका अभिप्राय यह बनता है कि हमें कागज़-पेंसिल पर लिखित पर्चे नहीं लेने चाहिएं, बच्चों का आकलन कक्षा-कक्ष की गतिविधि के दौरान ही शिक्षक द्वारा बिना दबाव के होना चाहिए। यह भी कहा जा रहा है कि यह आकलन समग्र व लगातार होना चाहिए। इसमें कल्पना यह है कि हर बच्चे के लिए, उसकी क्षमता व सीखने की गति के अनुसार ही सवाल बनने चाहिएं और उसके सीखने की तुलना, उसके पुराने स्तर से ही करनी चाहिए, न कि अन्य बच्चों से। समग्र और सतत मूल्यांकन के नाम से प्रचलित इस आकलन की समझ को सभी जगह बहुत महत्त्व दिया जा रहा है, यहां तक कि यह आग्रह है कि सभी बोर्ड परीक्षाओं में भी यही विधि अपनाई जानी चाहिए।

यह विचार नया नहीं है। आकलन में बच्चों के बारे में पढ़ाने वाले शिक्षक की राय, बच्चों के साथ गहन सम्पर्क के आधार पर बने, इस प्रकार के आकलन को महत्त्व देने पर भी ज़ोर दिया जाता रहा है। इसके विरोध में लगातार यह तर्क रहा है कि यह उपयोगी तो है, किन्तु शिक्षक का आकलन व्यक्तिपरक होने की तरफ झुकता है और वह वस्तुपरक नहीं होता। इसके बारे में यह भी समस्या रखी जाती है कि शिक्षक अक्सर इसे ईमानदारी से नहीं कर पाते, जिसमें लापरवाही का भी हिस्सा होता है। सैद्धान्तिक तौर पर, यह बहुत स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि हर बच्चे का सीखने का अपना ढंग व गति होती है और उसे उसके संदर्भ, अनुभव व सीखने के ढंग के आधार पर ही आकलित किया जाना चाहिए। ज़ाहिर है कि यह पूरी तरह से व्यवहारिक नहीं है। किसी भी शाला में व्यवस्थित रूप

से इतने सारे बच्चों का आकलन हो पाना और उसके आधार पर उनको उचित दिशा दिखा पाना शिक्षक व स्कूल के लिए संभव नहीं है। इसीलिए, समग्र और सतत मूल्यांकन पर छिड़ी इस चर्चा में, शब्दों के अलावा वास्तविक विश्वास की कम झलक मिलती है।

शिक्षा के बारे में कई बातें कही जाती हैं। यह सवाल महत्त्वपूर्ण है कि हम अपने देश में सभी बच्चों की बुनियादी शिक्षा के स्तर तक की बात क्यों करें, यह बुनियादी स्तर 14 वर्ष तक का होगा या 16 वर्ष तक का, यह सवाल तो महत्त्वपूर्ण है ही, किन्तु यह सवाल ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है कि हम किसी भी स्तर तक शिक्षा की बात क्यों कर रहे हैं? यह भी सवाल सोचने का है कि जो बच्चे स्कूल आ रहे हैं और जिनके माता-पिता उन्हें स्कूल भेज रहे हैं, उनकी स्कूल से क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं और स्कूल उन बच्चों के जीवन में क्या योगदान कर सकता है? इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें शिक्षा के प्रमुख विचारकों व शिक्षा को प्रोत्साहित करने वाली बड़ी-बड़ी हलचलों (आंदोलनों) की ओर देखने की ज़रूरत है। इसी के संदर्भ में हम आकलन और उसका उद्देश्य, असर व उससे जुड़े अन्य प्रश्नों के बारे में सोच पाएंगे।

व्यापक मूल्यांकन कितने सार्थक?

यह सवाल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहां हम एक तरफ़ बढ़-चढ़ कर समग्र और सतत आकलन की बात कर रहे हैं और मूल्यांकन शब्द से बचने का प्रयास कर रहे हैं, वहीं हम राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, बड़े-बड़े मूल्यांकन का हिस्सा बन रहे हैं व उनसे प्राप्त नतीजों पर अत्यधिक ग़ौर कर रहे हैं। इस मूल्यांकन में हम राज्यों, राष्ट्रों तक के स्तर पर स्थिति का विवरण प्रस्तुत कर, उससे नतीजे निकालने की कोशिश कर रहे हैं। मूल्यांकन के आंकड़ों में बेहतर प्रदर्शन की इस होड़ में, इस विवेचन के लिए कोई जगह नहीं है कि क्या यह तुलना उचित है, क्या मूल्यांकन का यह तरीक़ा ठीक है, क्या इस प्रकार के परीक्षण शिक्षा के व्यापक उद्देश्य व जनतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में उचित माने जा सकते हैं?

अगर हम किसी छोटे से शहर में रहने वाले लोगों के जीने के ढंग के बारे में, उनकी आकांक्षाओं व अपेक्षाओं के बारे में सोचें, तो यह स्पष्ट है कि सभी के लिए एक ही दिशा में आगे बढ़ना लक्ष्य नहीं है। परिवार के बच्चों के व्यवहार में और उनके सीखने के कौशलों व धारणाओं में ही एकरूपता नहीं है। बच्चों की परिस्थिति, उनके लिए उपलब्ध वयस्कों का समय, उनके खेलने के लिए व अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने का उपलब्ध समय आदि अन्यान्य पहलुओं में छोटे नहीं वरन् बड़े-बड़े अन्तर हैं। हालांकि, यह भी ज़ोर है कि हम ऐसे कानून बनाएं और ऐसे प्रचार करें, जिनसे बच्चे का घर-परिवार के काम में मदद करना अनुपयुक्त हो जाए। किन्तु फिर भी यह बहुत मुश्किल है कि ऐसी किसी भी बात को व्यवहारिक जामा पहनाया जा सके। जिस तरह की व्यवस्थाएं व आय के साधन परिवारों को उपलब्ध हैं, उनमें बच्चों से घर के कार्य में कुछ भी मदद न करने की अपेक्षा सम्भव नहीं दिखती। वैसे भी, यह आवश्यक है कि बच्चे, जो भी घर में हो रहा है, उसमें रुचि दिखाएं और उसके बारे में कुछ सीखें। उनके लिए खेल व जिज्ञासा का प्रदर्शन उन्हीं सन्दर्भों में होगा, जो उन्हें उपलब्ध हैं। अगर घर में सब लोग किताबें पढ़ते हैं या गहन अवधारणात्मक मुद्दों पर चर्चा करते हैं, तो बच्चों को उस तरह के मौके मिलेंगे। यदि घर में सभी काम माता-पिता करते हैं, तो ज़ाहिर है, बच्चा वह काम करना चाहेगा और सीखना चाहेगा।

विविधता बनाम एकरूप आधार

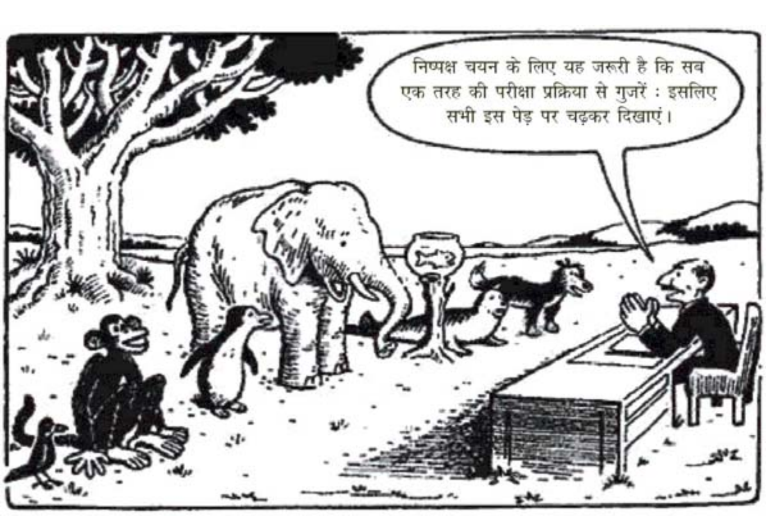
हम इस बात पर बहुत ज़ोर देते थे कि हमारे देश में बहुत विविधता है और इस विविधता को हमें समृद्ध करना है, मिटाना नहीं है। हालांकि, हम यह भी चाहते हैं कि आगे बढ़ने के अवसर सभी के पास हों। शिक्षा आगे बढ़ने का एक साधन हो सकती है, अतः सभी को शिक्षा उपलब्ध होनी चाहिए। इससे आगे बढ़ने पर हमारे आकलन के तरीके कुछ ऐसे निष्कर्ष निकालते हैं कि सभी बच्चों को 10 साल तक आते-आते 5 फुट 4 इंच का हो जाना चाहिए। हर बच्चे को 200 मीटर तक 40 सैकण्ड में दौड़ पाना चाहिए, आदि। यह आपको

अजीब लग रहा हो, तो आप यह सोचिए कि उम्र के अनुरूप सीखने के मानदण्ड निर्धारित करने का और क्या अर्थ हो सकता है? यह कल्पना है कि सभी बच्चे एक ही गति से, लगभग एक ही ढंग से और एक ही क्रम में सीखते हैं। अतः एक उम्र तक आते-आते और एक कक्षा तक आते-आते उन सभी को एक ही स्तर पर पहुंच जाना चाहिए।

इसमें दो अलग-अलग प्रश्न हैं। एक तो यह कि क्या सभी बच्चों को एक उम्र तक आते-आते एक स्तर पर पहुंच जाना चाहिए? यदि ऐसा है, तो उस उम्र को क्या माना जाए यानी किस उम्र पर, हम इस बात का आकलन करें कि बच्चे कहां तक पहुंचे हैं? और दूसरा प्रश्न यह है कि किन चीज़ों के सन्दर्भ में यह तुलना की जाए कि बच्चे एक बराबरी के स्तर पर पहुंचे हैं या नहीं? इन दोनों प्रश्नों के इर्द-गिर्द ही हमारी विविधता, सीखने की प्रक्रिया व इन्सान के प्रति हमारे नज़रिए के बारे में हमारी राय घूमेगी। यह नहीं सोचा जाता कि क्या कक्षा 8 के बच्चे को आटा गूंदना या रोटी बेलना आता है, क्या उसे पता है कि बीज कैसे बोया जाता है अथवा यह कि उसके आस-पास जो पौधे हैं, उनसे कैसे कुछ ऐसी चीज़ें बनाई जा सकती हैं जो विभिन्न तरह से उपयोगी हों। अगर आपको लगता है कि कक्षा 8 के बच्चे को रोटी बनाना आने की कोई आवश्यकता नहीं है, तो फिर उसे जटिल गणितीय समस्याओं के जिनका उसके अभी के जीवन से, उसके खेल व बचपन से कोई संबंध नहीं है, आधार पर जांचने का क्या तुक है? ऐसे तार्किक भाषाई उलझनों, जो दोस्तों के साथ उसके वार्तालाप या घर या परिवार में अन्य लोगों के साथ वार्तालाप से कोसों दूर हो, इसके आधार पर उसे न सीखने वाला घोषित कर देने का क्या अर्थ है?

शिक्षा व्यापक हुई है और उसका अन्तर्राष्ट्रीयकरण भी हुआ है। हर देश के विचार दूसरे देश को उपलब्ध हैं और हर राज्य के दूसरे राज्य को भी। लेकिन यहां मज़े की बात यह है कि एक ही संकुल में स्थित एक स्कूल के विचार और कार्य करने के ढंग उसी संकुल में उपस्थित दूसरे स्कूल को उपलब्ध नहीं हैं। असल में तो संकुल में किसी भी स्थान के कोई विचार ही उपलब्ध नहीं हैं और न ही यह अपेक्षा है कि उनके कोई विचार होंगे। स्कूल में क्या होना है, कौन-सी किताब होनी है, किस गति से बच्चों को पढ़ाना है और क्या पढ़ाना है, कौन-से उदाहरण देने हैं, किन प्रसंगों पर चर्चा करवानी है; यह सब तो शिक्षक के, स्कूल के, संकुल के अधिकार में नहीं है। इस तरह के अन्तर्राष्ट्रीय परीक्षणों का हिस्सा बनने से धीरे-धीरे यह डर है कि यह राष्ट्र के हाथ में भी नहीं रहेगा।

जो लोग इस टेस्टिंग के संदर्भ में इस प्रकार के परीक्षणों में संलग्न हैं उनका यह दावा है कि इन परीक्षणों से नीति-निर्धारण व शिक्षा के आर्थिक विकास के संदर्भ में योगदान को समझने में मदद मिलेगी। उनका दावा है कि इस प्रकार के परीक्षणों से शिक्षा की उपलब्धता, गुणवत्ता व क्षमता को समझने में मदद मिल सकती है। यह महत्त्वपूर्ण है कि क्षमता की जांच करने के लिए एक सामान्य प्रश्न पत्र सभी को दिया जाएगा। इस संदर्भ में हाल ही में एक कार्टून मुझे मिला है, मैं उसे नीचे प्रस्तुत कर रहा हूं।



भारतीय शिक्षा व्यवस्था!!!

परीक्षण की नई व्यापकता कितनी उचित

जांच के आधार स्पष्ट हैं और ये उन लोगों द्वारा निर्धारित हैं, जो शिक्षा के लक्ष्य को गहन, तार्किक, अकार्मिक व तकनीकी व्यवसायों में भागीदार मानते हैं। उनके लिए

भारतीय शिक्षा व्यवस्था!!!

शिक्षा राष्ट्रीय निर्माण व आर्थिक विकास का माध्यम है। अतः यह महत्त्वपूर्ण है कि सीखने वाला सीधे सरल सवालों के अलावा उलझी हुई समस्याओं के हल तक पहुंच सके। हाल ही के परीक्षणों में शिक्षा के उद्देश्यों को सीमित करने के आक्षेप से विचलित होकर परीक्षकों ने ऐसे प्रश्नों का निर्माण शुरू किया है, जो अन्य बातों की भी जांच करते हैं। उसमें उनकी संवेदनशीलता, नागरिक संचेतना व अन्य सामाजिक ज़िम्मेदारियों को कुरेदने का प्रयास किया जाता है। इन सवालों के उदाहरण देना उचित नहीं है, क्योंकि शायद इनके ऊपर अभी विचार चल रहा है और ये परीक्षण की स्थिति में हैं। लेकिन यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अनेक तरह की विविधता के संदर्भ में, इन सबका परीक्षण व अध्ययन करने के लिए किस तरह के अध्ययनों और ज्ञान व समझ की ज़रूरत परीक्षकों को होगी। अभी इन परीक्षणों से ऐसा लगता है, मानो एक प्रकार के सामाजिक व्यवहार, जो उच्च एवं मध्यम वर्ग के मूल्यों से निर्धारित है, को सभी के संदर्भ में उचित मानकर परीक्षण किया जाना चाहिए। सांस्कृतिक, सामाजिक और व्यवहारिक संदर्भों को नज़रअंदाज़ कर, यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि सभी बच्चे परीक्षणों में एक ही तरह के उत्तर को सही मानकर, सही चुनेंगे। उदाहरण के लिए, एक सवाल का यहां उल्लेख करना उचित होगा। प्रश्न पूछा जा रहा है कि आपके पास कचरा है और अगर आपके पास में कोई कचरा पात्र नहीं है, तो आप क्या करेंगे? यह प्रश्न उस सन्दर्भ में उचित है, जहां पास में नहीं तो कुछ दूर आपको कचरा पात्र मिल जाएगा। किन्तु इस प्रश्न के जो विकल्प हैं उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जो इस संदर्भ में विविधता के दायरे को ध्यान में रख सके। इसी तरह का एक ऐसा सवाल है जो यह जानना चाहता है कि अगर एक बड़ी बहन है और एक छोटा भाई है, तो बहन शाला जाना पसंद करेगी या छोटे भाई की देखभाल करना? इस प्रश्न से यह जांचने का प्रयास है कि बच्चे लड़कियों की शिक्षा के प्रति कितने सचेत हैं। एक तो यह बात हैरानी की है कि जांचकर्ताओं को इस सवाल पर राय देने के लिए 10-12 साल के बच्चे उपयुक्त लगते हैं। और दूसरा, यह कि यह सवाल इस बात का ध्यान नहीं रखता कि बच्चों का क्या मत होता, अगर भाई बड़ा होता और एक छोटी बहन होती। सामाजिक परिस्थितियों में अक्सर लोग व्यवहारिक निर्णय लेते हैं। लेकिन परिस्थिति को इस प्रकार निर्धारित करना, जिसमें व्यवहारिक निर्णय अनुचित प्रतीत हो, यह अपेक्षा करना है कि बच्चे करेंगे तो कुछ एवं लिखेंगे कुछ और।

व्यापक स्तर पर उपयोग के बंधन के कारण, तथाकथित वस्तुपरकता व निरपेक्षता के कारण, प्रश्नों के प्रकार व स्वरूप भी अधिकांशतः वस्तुनिष्ठ (multiple choice) ही होता है। बहु-विकल्पी प्रश्न (MCQ) होने से जांच मशीन द्वारा की जा सकती है और उसमें न तो इंसानी वक्त व दिमाग लगता है और न ही व्यक्तिपरकता के लिए कोई जगह है। उत्तरदाता के किसी भी विकल्प के चुनाव का कारण या एक के स्थान पर दो अथवा तीन पर निशान लगाने के पीछे दिए गए तर्क पर चर्चा की कोई गुंजाइश नहीं है। जैसा पहले भी कहा गया है, इन परीक्षणों में ज़ोर इस बात पर देने का होता है जिसमें बच्चों के लीक से हटकर सोचने को केन्द्रित किया जाए, उनके अवधारणात्मक ज्ञान का परीक्षण हो। यह कुछ ऐसा आभास देता है मानो इन दोनों में आपस में कोई संबंध ही न हो।

चार या पांच संभावनाओं में से एक चुनने के आधार पर अवधारणात्मक जांच किस तरह से होगी यह समझना मुश्किल है। अक्सर अवधारणा को समझने और इसका उपयोग करने में सोच की विविधता के कारण विश्लेषण की कई संभावनाएं सामने आ सकती हैं। क्या यह आवश्यक नहीं कि बच्चे के उत्तर चुनने के कारण व सोचने के तरीके को समझा जाए? क्या हम उसकी तार्किक विकास की दिशा, अवधारणाओं को एक-दूसरे में पिरोने की क्षमता का आकलन करना चाहते हैं या कुछ और? हाल ही में एक बैठक में प्रश्न पत्र बनाने वालों ने यह कहा कि इस प्रकार के सवाल बनाना बहुत चुनौती भरा काम है। इसे बनाने में समय लगता है और यह बहुत ही सृजनात्मक प्रक्रिया है। ऐसे सवाल बनाना जिनमें एक सम्भावना को चुनना हो और जो सिर्फ़ जानकारी व याददाश्त का परीक्षण न करे, यह एक टेढ़ी-खीर है। इसमें बहुत दिमाग लगता है और यह हर व्यक्ति नहीं कर सकता। सवाल यह है कि अगर यह हर व्यक्ति नहीं कर सकता तो ज़ाहिर है शिक्षक भी नहीं कर सकता है और इसका मतलब यह हुआ कि बहुत से बच्चों ने इस तरह के सवाल पहले

नहीं देखे होंगे। उन्हें सवाल को समझाने की व उन्होंने क्या सोचा, इसे समझने की कोई गुंजाइश नहीं है। इससे स्पष्ट है कि उन बच्चों ने जिन्होंने इस तरह के सवाल पहले किए हों, वे इन्हें बेहतर करेंगे।

इसी चर्चा में यही बात हुई कि यह जो जांच का क्रम है उसमें हमें यह देखना है कि उम्र के हिसाब से क्या लक्ष्य बच्चे को हासिल कर लेने चाहिएं? क्या पाठ्यचर्या निर्धारित होनी चाहिए? सवाल यह उठता है कि यह लक्ष्य किस प्रकार तय किए जाएंगे। प्रश्न पत्र बनाने वाले कितने बच्चों से मिले होंगे और कितने जगहों पर उन्होंने जाकर बच्चों की परिस्थिति व उनके अनुभव के बारे में समझने का प्रयास किया होगा? इन सवालों की चर्चा के बजाय हम यह बात नहीं कर सकते कि बहु-सम्भावना प्रश्नों से क्या जांच की जा सकती है और इन जांच के आधार पर क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। लेकिन हम तो उन्हीं को महत्त्वपूर्ण मानते थे और पूरी शिक्षा को इन्हीं के आकलन के आधार पर निर्धारित करने का प्रयास कर रहे हैं। प्रश्न बनाने वालों की सृजनात्मकता का परीक्षण तो इस प्रक्रिया में ज़रूर हो जाता है लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि ये बच्चों की समझ का परीक्षण कर पाते हैं अथवा नहीं।

शिक्षा क्यों बनाम परीक्षण

यदि शिक्षा वह तरीका है जो आपको सीखने में मदद करती है और अपने विचारों पर पुनर्विचार करना सम्भव बनाती है तो फिर इस प्रकार के परीक्षणों का क्या औचित्य है, जो बंद हों? जब तक हम पाठ्यचर्या को, जिसमें सीखने की प्रक्रिया शामिल हो, संकीर्ण ढंग से परिभाषित न करें, तब तक हम परीक्षण योग्य अपेक्षाओं को अलग नहीं कर सकते। अगर शिक्षा बच्चे के सम्पूर्ण अनुभव और व्यक्तित्व को विकसित और समृद्ध करने के लिए है तो फिर उसने गणित सीखा अथवा नहीं, महत्त्वपूर्ण तो है किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल नहीं है। अगर शाला बच्चों के माध्यम से समाज की विविधता से रूबरू करवाने का एक ढांचा है, तो ऐसे आकलन, जिसमें बच्चों का एक-दूसरे से मिलने का असर नहीं समझा गया हो, क्यों उपयोगी माने जाएं? यदि शिक्षा मात्र आर्थिक विकास व व्यक्तिगत सीढ़ी चढ़ने का माध्यम है, तब तो इन परीक्षणों का कुछ औचित्य है, लेकिन उसमें भी यह आवश्यक है कि इसमें किस तरह के प्रश्न पूछे जाएंगे, इस पर विचार किया जाए। क्या यह आवश्यक है कि सभी गणितज्ञ और वैज्ञानिक बनें और इसलिए उन्हें गहरे अवधारणात्मक व समस्याओं को हल करने के तार्किक तरीक़ों पर महारत हासिल करना ज़रूरी है? या फिर यह पर्याप्त है कि वे आगे सीखने के लिए सक्षम बन जाएं और इस बात से रूबरू हो पाएं कि वे आगे सीख सकते हैं, बनिस्बत वे ऐसा चाहें तो।

इन अन्तर्राष्ट्रीय परीक्षणों के बारे में यह कहा जाता है कि इनको बनाने वाले विशेषज्ञ हैं, किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि इन विशेषज्ञों में कौन शामिल हैं? क्या इसमें विभिन्न संदर्भों में रहने वाले और प्राथमिक शालाओं में बच्चों से जूझने वाले 30 प्रतिशत शिक्षक भी शामिल हैं? क्या इसमें जिन बच्चों के ऊपर ये परीक्षण किए जा रहे हैं और जिनमें से बहुत से माता-पिता किसी भी विषय के विशेषज्ञ नहीं हैं या अशिक्षित हैं, का कुछ प्रतिशत शामिल है अथवा ये विशेषज्ञ बड़े शहरों में रहने वाले अभिजात्य वर्ग के और संदर्भ से कटे महानगरीय व्यक्ति हैं, जिन्होंने शायद कभी किसी प्राथमिक शाला या उच्च प्राथमिक शाला में लगातार 2-3 वर्षों तक पढ़ाकर नहीं देखा। यह मानना कि परीक्षण करने वाले को अध्ययन द्वारा तार्किक ज्ञान है और उसने सारे शोध पत्र पढ़े हैं, इसलिए उसे स्कूल के अनुभव की व बच्चों के अनुभव की आवश्यकता नहीं, वैसा ही है, जैसा यह कहना कि एक वैज्ञानिक बग़ैर किसी उपकरण को हाथ लगाए या कोई डॉक्टर बगैर किसी मरीज़ को देखे अपने विषय का विशेषज्ञ बन सकता है। हालांकि, शिक्षा के विशेषज्ञों का दवाई के विशेषज्ञों से तुलना करना उचित नहीं है, किन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि ऐसा कैसे मान लिया जाता है कि स्कूलों व शिक्षण के अनुभवों से अनभिज्ञ व्यक्ति, कुशल शिक्षा विशेषज्ञ व कुशल शिक्षा प्रशासक बन सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय परीक्षणों से यह स्पष्ट है कि विकासशील देश परीक्षणों के निचले स्तर पर एकत्र हैं और इसके संदर्भ में यह कहा जा रहा है कि, चूंकि ये टेस्ट विकसित देशों के आधार पर बनाए गए हैं इसलिए ये

विकासशील देशों के बच्चों के लिए ज्यादा मुश्किल हैं। यह भी कहा जा रहा है कि विकासशील देशों को विकसित देशों के समकक्ष आने के लिए अपनी शिक्षा व्यवस्था में सुधार करना पड़ेगा। शंघाई (चीन) का उदाहरण देकर यह कहा जाता है कि अगर विकासशील देश चाहें तो वे भी विकसित देशों के स्तर तक आसानी से पहुंच सकते हैं, जैसा कि शंघाई (चीन) ने किया है और वह अब विकासशील देशों से भी आगे है। इस पूरे तर्क में इस बात की झलक मिलती है कि कैसे इन परीक्षणों और स्तर के आकलन को संदर्भ से अलग करके देखा जा रहा है और एक तरह के ज्ञान को, एक तरह की क्षमता को, सर्वोपरी मानकर सभी पर लादने की कोशिश की जा रही है। यहां यह कहना आवश्यक होगा कि कम से कम मेरा ऐसा कोई मत नहीं है कि ये क्षमताएं बच्चों में नहीं होनी चाहिएं और इन क्षमताओं का बच्चों में विकास का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यह सर्वोपरी मानना और शिक्षा के ढांचे की नब्ज़ को इनके माध्यम से जांचना बिल्कुल अनुचित है। हाल ही के राष्ट्रीय परीक्षणों में कई स्कूलों व शिक्षकों का काफी समय गया है, बहुत से राज्यों में, शिक्षक कई-कई बार इस तरह के आंकड़े इकट्‌ठे करने और अनेक स्कूलों के बच्चे कई अलग-अलग परीक्षणों में डेटा पॉइन्ट के रूप में इस्तेमाल होते रहे हैं। इन आंकड़ों का एकत्रीकरण व विश्लेषण, शिक्षकों व शाला के स्तर पर तो नहीं होता और न ही यह सोचा जाता कि शाला के लक्ष्य, व्यापक पाठ्यचर्या दस्तावेज़ के आलोक में क्या होने चाहिएं। हमारी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 और कई राज्यों की राज्य पाठ्यचर्या बहुत-सी बातें स्थानीय संदर्भ के बारे में करती हैं। लेकिन जो एकमात्र चीज़ असल में महत्त्वपूर्ण बनती है, वह यही है, जो राष्ट्रीय स्तर पर जांची जाती है और मॉनीटर की जाती है। आगे आने वाले समय में यह शायद अब धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जांची जाए। लगातार परीक्षणों और उनके आंकड़ों के संकुल स्तर व और भी छोटे स्तर पर विश्लेषण न किए जाने से, उनकी ज़िम्मेदारी व चिंता बच्चों के प्रति नहीं वरन् कुछ अधिकारियों के प्रति बढ़ रही है। लगातार परीक्षणों से आहत शिक्षक, परीक्षणों के अनुरूप पढ़ाने को मजबूर हैं, उनके पास कोई और तरीका नहीं है।

संक्षेप में :

कुल मिलाकर जो प्रमुख सवाल, इस तरह के परीक्षणों के और उन पर छपी रपटों से उभरते हैं, वे मेरे हिसाब से निम्नलिखित हैं:-

- क्या ये परीक्षण व्यापक शैक्षिक लक्ष्यों व सिद्धान्तों के अनुरूप हैं या ये बहुत ही संकीर्ण दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते हैं?
- क्या इस तरह के परीक्षणों का कोई फ़ायदा है? इनका फायदा तभी है, जब इनसे मिला फ़ीडबैक शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, पाठ्यपुस्तक व अन्य सामग्री बनाने वालों के लिए उपयोगी व ग्राह्य बन सके? इस तरह के बार-बार परीक्षण करना और इनके आंकड़ों का शिक्षकों के लिए नहीं बल्कि उनके परीक्षण के लिए उपयोग करना, इसका क्या औचित्य है?
- क्या विशिष्ट अवधारणाओं व अति-विशिष्ट क्षमताओं का इतने व्यापक स्तर पर और सभी बच्चों पर परीक्षण करना सार्थक है? क्या यह हमें परिस्थिति का कारण समझने में मदद कर सकता है?
- क्या यह मान्यता कि कक्षा में जो होता है, वही बच्चे के सीखने व उसके परीक्षण में अच्छा कर पाने का आधार है, उचित है? क्या हम यह कह सकते हैं कि एक ही कक्षा में सभी विविधताओं के बावजूद, सभी बच्चों का लगभग एक समान प्रदर्शन होना चाहिए?
- क्या किसी भी परीक्षण में संदर्भ का विवरण और उसको समझने का लम्बा प्रयास अनिवार्य नहीं होना चाहिए?
- बिना इन परीक्षणों के भी यह ज्ञात है कि बच्चे सीख नहीं रहे हैं, हमारे स्कूलों से बच्चों का शाला त्याग करना व उनका बोर्ड परीक्षाओं में प्रदर्शन, इस बात को साफ़ दिखाता है। क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि इन परीक्षणों के स्थान पर यह प्रयास होना चाहिए कि परिस्थिति को बदलने के लिए क्या रास्ता है?

- क्या शिक्षा मात्र आर्थिक विकास व राष्ट्रीय विकास का माध्यम है? क्या शिक्षा का लक्ष्य सिर्फ़ बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करना व उसके अनुरूप ढालना है ताकि वे तथाकथित राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय चिंताओं के बारे में शिक्षित हों? क्या यह आवश्यक नहीं कि शिक्षा एक समाज और उसको संचालित करने वाली व्यवस्था से जूझने व उसमें सुधार व परिवर्तन करने का माध्यम भी हो? क्या हम शिक्षा को समाज पर काबिज़ लोगों के मूल्यों के अनुरूप बनाकर उसे पंगु नहीं बना रहे हैं?
- इन परीक्षणों से ऐसा तो नहीं हो रहा है कि हम सब एक ही तरह की ज़िन्दगी, एक ही तरह की दौड़ में शामिल हैं। क्या यह आवश्यक नहीं है कि समाज के विकास में अलग-अलग तरह की क्षमताओं व आकांक्षाओं की जगह हो या और ज़ोर देकर कहें जिसकी हमें आवश्यकता है?
- क्या शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे किसी न किसी तरह स्थानीय समाज से रिश्ता बनाना है? या फिर हम चाहते हैं कि सबके सब एक जैसे बनें, एक-दूसरे की कॉपी हों और आपस में प्रतिद्वन्द्वी हों?
- इन परीक्षणों और इनके जांचने के ढंग व विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि इनका लक्ष्य यह देखना नहीं है कि बच्चे को क्या आता है, वरन् यह पता करना है कि उसको क्या नहीं आता है? इस मसले पर काफ़ी चर्चा पहले भी हो चुकी है, इसलिए यह उचित है कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि आकलन का उद्देश्य क्या होना चाहिए और उसे बच्चे के सीखने के बारे में किस प्रकार से अध्ययन करना चाहिए और उस पर किस प्रकार टिप्पणी करनी चाहिए।
- क्या परीक्षकों का यह मानना उचित है कि प्रक्रियात्मक ज्ञान, अवधारणात्मक ज्ञान से हल्का है और बच्चे में अगर प्रक्रियात्मक ज्ञान है, तो वह कुछ नहीं जानता?

परीक्षण व बच्चे

परीक्षणों का लक्ष्य बच्चों ने जो सीखा है उसको पहचान कर, उसका गुणगान करना होना चाहिए, न कि लगातार यह दिखाना कि उन्होंने कुछ नहीं सीखा। जब तक हम यह नहीं जानेंगे कि बच्चों की पृष्ठभूमि क्या है, उनकी क्या आकांक्षाएं हैं, तब तक हम यह नहीं समझ पाएंगे कि उन्हें क्या सीखना चाहिए और उसमें स्कूल जो सिखाना चाहता है, उसका कितना महत्त्व है। स्कूल में बच्चों के सीखने की संभावना का आकलन, इस बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए कि उनके व उनके परिवार के लिए स्कूल में सिखाई गई पाठ्यचर्या का कितना महत्त्व है। इसका तात्पर्य यह है कि हमें शिक्षा की व्याख्या को व्यापक करने की ज़रूरत है और स्कूल के लक्ष्यों और स्वरूप को भी। बच्चे सिर्फ़ स्कूल में ही नहीं सीखते और वही नहीं सीखते जो स्कूल में उन्हें सिखाया जाता है। जो बातें बच्चे स्कूल के बाहर सीखते हैं और जिन्हें उनका परिवार व समुदाय महत्त्वपूर्ण मानता है उसके लिए भी हमारे आकलन में जगह होनी चाहिए। यह बात ठीक है कि जो भी हम सीखने के संदर्भ में मानें, वह हमारे संविधान के अनुरूप होना चाहिए। इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय परीक्षणों का औचित्य शिक्षा के इस व्यापक अर्थ के संबंध में अस्पष्ट हो जाता है। हमें यह भी समझने की ज़रूरत है कि सभी लोग उच्च मध्यमवर्गीय, अभिजात्य वर्ग की आकांक्षाओं के अनुरूप बच्चों के विकास को नहीं देखते। अतः हमें यह स्पष्ट होने की आवश्यकता है कि हम किस हद तक अमूर्तता व अवधारणाओं के बौद्धिक खेल को महत्त्व देते हैं।

एक बात आखिर में कहना चाहता हूं वह यह है कि शिक्षा के कुछ सामान्य लक्ष्य होना लाज़िमी है और इन लक्ष्यों के प्रति ढांचे को सचेत रहना व इनकी प्राप्ति को संभव बना पाना अनिवार्य है। हर बच्चे का अलग से परीक्षण करना और जो भी उसने सीखा है उसी को उचित मानना मेरे विचार से मेल नहीं खाता। आकलन व जिस ढांचे में बच्चा पढ़ रहा है उसको उचित फ़ीडबैक मिलना अनिवार्य है। सवाल यह है कि इस फ़ीडबैक को मिलने का अच्छा तरीक़ा क्या है? आकलन की इस प्रक्रिया में किस-किसका शामिल होना उपयोगी होगा व आकलन का ढांचा व स्वरूप कैसा होगा तथा उससे निकलने वाले परिणामों का उपयोग किस प्रकार किया जाएगा? ◆